

श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, हम्पी, कर्नाटक की अधिष्ठात्री



परमपूज्या

आत्मज्ञा माताजी

Vardhaman Bharati International Foundation

H.O. 12, Cambridge Road, Bangalore 560 008 (India)

श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, हम्पी, कर्नाटक की अधिष्ठात्री
परमपूज्या मुनोज्ञानी

आत्मदृष्टा माताजी

एक परिचय - झांकी

स्व. कु. पारुल टोलिया

एम.ए. गोल्ल मेडलिस्ट

सात एवार्ड प्राप्त जर्नालिस्ट

रात्रि का घना अंधकार चारों ओर फैला हुआ है..... सर्वत्र शांति छाई हुई है... तोरव, सुखमय शांति। इस अंधकार में प्रकाश देनेवाले तारे और धूमिल चंद्रमा आकाश में मुस्कुरा रहे हैं। चारों ओर नज़र दौड़ाने पर टूर खड़े पर्वतों के आकार भर दिखाई देते हैं और कभी कभी छोटी बड़ी चट्टानें भी।

अपने आप में बन्द यह एक अलग ही दुनिया है। ऐसी दुनिया कि जहाँ करम रखने पर मन में एक प्रकार की अपूर्व शांति दौड़ जाती है, ऐसी दुनिया कि जहाँ पहुँचने पर हम इस दुनिया को भूल जाते हैं, जहाँ इस जग के विलास, विडंबना, प्रणय, क्रोध, मोह, माया, तोष पहुँच नहीं पाते।

..... अगर आप को यहाँ आना है तो इन सब को घर में बन्द करके आइए, क्योंकि आप यहाँ आते हैं भटकती - तड़पती हुई इस आत्मा को तृप्ति दिलाने, उसे दुर्लभ मानवजीवन का मूल्य समझाने, अपने आप को टटोलने और 'अंदर' झाँकने - न कि अपने विषय - कथाओं को बढ़ाने।

अनेक महापुरुषों की परंपरेणु से धूमरित यह स्थान है योग-भूमि हम्पी - 'सद्वत्स्या स्तोत्र' में उल्लिखित "कणाटि रत्नकूट भोटे च" वाला रत्नकूट-हेमकूट का कर्णाटक स्थित प्राचीन जैन तीर्थ एवं रामायण कालीन किष्किन्धा नगरी हम्पी - विजयनगर के समृद्ध साम्राज्य का भूला हुआ वह भू-भाग कि जहाँ यह नूतन

जैन तीर्थरूपी आश्रम - श्रीमद् राजचंद्र आश्रम - प्राकृतिक गुफाओं में बसा है - शहरी ज़िन्दगी की अडचनों और विकृतियों से कोसों दूर।..... यहाँ पर रेल, ट्रेन मोटरगाड़ी या बस की आवाज़ तक पहुँच नहीं पाती।।

पहाड़ी पर स्थित इस तीर्थ - धाम के नीचे हरे लहलहाते खेत, दूसरी तरफ पर्वत एवं पर्वत के तले किलकिल बहती तीर्थमलिका तुंगभद्रा नदी और ऊपर आश्रम में वंधा हुआ सुन्दर गुफामन्दिर - इन्हें देखने भर से आपको बुराईयों न जाने कहाँ गायब हो जाती हैं, जैसे वे पहले कभी यहाँ ही नहीं।।।

..... यहाँ पर हर किसी का स्वागत होता है। हमारे समाज को छेदनेवाले ऊँच - नीच के भेद को यहाँ कोई स्थान नहीं। वोसवें जैन तीर्थंकर परमात्मा मुनिसुव्रत भगवान के एवं मर्यादा प्रभु पुरुषोत्तम श्री राम के विचरणवाली मानी गई रामायणकालीन किष्किन्धानगरी और मध्यकालीन विजयनगर साम्राज्य की इस भूमि में तो जैसे आज भी, गांधीगुरु श्रीमद् राजचंद्रजी के कृपापात्र योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानन्दधनजी जैसे महामानव की योग, ज्ञान एवं भक्ति की त्रिवेणी से पावन धरा पर, भगवान मानों साक्षात् बसते हैं।..... और उन की भेद - राग द्वेष से भिन्न नज़रों में तो सभी आत्माएँ समान हैं, — चाहे फिर वे अभीर की हों या गरीब की, मनुष्य - देहधारी की हों या पशु-पक्षी - कीट-पतंग की। यहाँ सच्चे भावों का स्वागत होता है।

इस आश्रम की चल्तानेवाली है - बाहर से दिखने में सीधी, सादी, सामान्य वेषधारी, पर भीतर से ज्ञान, भक्ति एवं योग की अमाप्य ऊँचाईयों पर पहुँची हुई आत्मज्ञा "माताजी"। हरकोई उन्हे इसी नाम से पुकारता है। ये सिर्फ नाम से ही नहीं, बल्कि काम से भी "माताजी" हैं - सभी की माताजी, वात्सल्य एवं करुणा के सागर-सी माताजी।।।

धनदेवीजी नामधारी जगत्माता की काया गुजरात की, कच्छ की, ही है, परंतु आत्मा, देह होते हुए भी, महाविदेह क्षेत्र की। उन्हे "जगत्माता" के, आश्रमकी "अधिष्ठात्री" के रूप में संस्थापित किया है जंगल में मंगलरूप इस नूतन तीर्थधाम के संस्थापक महायोगी श्री. सहजानन्दधनजी ने, बरसों पहले ई. १९७० में 'योग के

द्वारा' अपना देहत्याग करने से पहले । आज सारा आश्रम रोशन है इन्ही जगत्माता के मुक्तुराते, जगमगाते, तेजस्वी, ज्ञानपूत चेहरे से । माताजी जगत के रागादि मोहबंधनों से दूर फिर भी जैसे निष्कारण करुणा और सर्व - वात्सल्य का साक्षात् रूप है । वह सिर्फ हमारी ही नहीं, अनेक अबोल, वेदनाग्रस्त, मूक पशु-प्राणियों की भी "माँ" है । हर अतिथि की, हर आगतुक साधु-साध्वी की ही सेवा-वैधावच्च नहीं, हर यात्री की, हर श्रावक की, हर बालक की, हर पशु-पंछी की भी जो वात्सल्यमयी सेवा माताजी करती है, वह तो देखते ही बनता है ।

इतनी योग, ज्ञान एवं भक्ति की ऊँचाई पर रही हुई आत्मज्ञानी माताजी इतनी सहज सरलता से सभी की सेवा में लगती है उसे देखकर तो हर कोई दंग रह जाता है । माताजी बालिकाओं एवं बहनों के लिये तो वात्सल्य का एक विशाल वट-वृक्ष-सा आसरा है । दूसरी ओर जीवन भर उनसे आत्मसाधना की दृढ़ता प्राप्त करने के बाद, मरणासन्न बूढ़ों या अन्य मनुष्यों के लिये ही नहीं, पशुओं के लिये भी "समाधिमरण" पाने का वे एक असामान्य आधार है । कई मनुष्यों ने ही नहीं, गाय, बछड़े और कुत्तों ने भी उनकी पावन निश्वा में आत्म-समाधिपूर्वक देह छोड़ने का धन्य पुण्य पाकर जीवन को सार्थक किया है । ऐसी सर्वजगत्तारिणी वात्सल्यमयी माँ के लिये क्या और कितना लिखें ? वर्णन के परे है उनका बड़ा ही - अद्भुत, विरल, विलक्षण जीवनवृत्त ।

ऐसी परम विभूति माँ के चरणों में एवं ऐसी पावन तीर्थभूमिपर खुले आकाश के नीचे बैठकर कई उच्च विचार आते हैं और गायब हो जाते हैं । फिर अचानक वेदना की टीस भरा एक विचार आता है कि जल्द ही इस स्वर्ग-सी दुनिया को छोड़कर अपने व्यवहारों की खोखली दुनिया में चले जाना पड़ेगा..... । जो उदास होता है । जाना नहीं चाहती । काश ! (शायद अपनी ईच्छाओं से ही सृजित) ऐसी दुनिया ही न बनाई गई होती ! ! हमी में, वात्सल्यमयी माँ के चरणों में जो अपनान, जो प्यार, मिलता है, वह इसमें कहाँ ? वहाँ के लोग जैसे इन्हें जानते ही न हों..... । फिर भी जिम्मेदारियाँ हमें खींचती हैं जाने पर बाध्य करती हैं..... विवश होकर जाने के लिये चल देती हैं तो यह संकल्प करके कि

— "फिर भी यहाँ वापस आऊँगी, जल्द ही ! " धनरात्रि में ये विचार शामिल हो जाते हैं और मन पर फिर से शांति छा जाती है ।

[कापीराइट लेख]

नोट: — इस लेख को लिखने के कुछ वर्ष बाद, लेखिका कु. पारल की दिव्यप्रेम की प्यासी आत्मा, इस 'खोखली दुनिया' को छोड़कर (१८.८.८८ को बस ऐक्सीडेंट को निमित्त बनाकर) चली गई..... शायद अपने सूक्ष्म आत्मरूप से इसी आत्मज्ञा माँ के चरणों में विचरने ! ! —५

योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानन्दधनजी संस्थापित
श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, हमी, कर्नाटक की अधिष्ठात्री
परमपूज्या

रहस्यवादिनी आत्मज्ञा जगत्माता

ले. प्रा. प्रतापकुमार टोलिया

बात है अब से कुछ ६५ वर्ष पूर्व की । गुजरात-कच्छ के एक गाँव 'सांभराई' में एक विलक्षण बालिका का पावन जन्म हुआ । पूर्व संस्कारों की संपन्नता के कारण बाल्यावस्था से ही वह निर्मल ज्ञानपूर्ण थी ।

एक दिन, चार साल की आयु में वह अपने पिता के साथ सांभराई से दूसरे गाँव पैदल जा रही थी । दोनों ओर टीलोंवाला सँकरा रास्ता आया । एक ही वाहन-गाड़ी जा सके उतनी ही चौड़ाई । पीछे से उस प्रदेश के छोटे-से रियासती राव -राजा- का 'वेलड़ा' (वाहन) अपने रिसाले के साथ आ रहा था । बालिका धनबाई उस सँकरे मार्ग के बीचोबीच चल रही थी । उसके पिता शिवजी सेठ ने

पीछे से आ रहे वाहनों को मार्ग देने एक ओर खिसक गए किन्तु बालिका, वाहनचालकों के कई बार आवाज़ देने पर भी, हटी नहीं बीच से।

चालक ने ज़ोर की आवाज़ देकर उसे धमकाया —

“अरे बच्ची ! हट जा बीच से। तेरा दिमाग फिर गया है क्या ? अंदर राव बैठे हैं, तुझे पकड़ लेंगे...” परन्तु बालिका ने इस पर भी बिना हटे, उसी निर्भयतापूर्वक चलते हुए प्रति-प्रश्न किया — “दिमाग किसका फिर गया है, मेरा या राव का ? पूछो उन से.....”

और वेलड़े के भीतर बैठा हुआ राव इस सच्चाई को सुनकर चकित और भयभीत हुआ। उसने बालिका को अपने पास, एकांत में, वेलड़े के भीतर अकेली बुलाया। सभी को दूर हटा दिया। पिता शिवजी सेठ तो श्रधर काँपने लगे कि बच्ची को यह साराफिरा राजा अब क्या करेगा — कहीं मारेगा, पीटेगा, पकड़ रखेगा ?

बालिका धनवाई तो प्रसन्न निर्भीकता से राव के पास जा बैठकर वही बात सीधी ही उन से दोहराकर पूछने लगी —

“रावसाहब ! क्या आपका ही दिमाग नहीं फिर गया है ? सर पर नहीं, हृदय पर हाथ रखकर सच कहिये..... !”

और सकपकाते हुए अंतर्दोषी राजा अपने आपको अधिक छिपा नहीं सके। बालिका की आँखों के तेज और आवाज़ की बुलन्दी के सामने वे ढीले पड़ रहे थे। राव कुछ उत्तर दे उत्तरने में तो ज्ञानी बालिका का उनके भीतर के गुप्त पापाशय को झकझोरनेवाला पुण्यप्रकोप प्रकट हुआ — “प्रजा के पिता समान होते हुए भी ‘रावण’ जैसा काम करने जाते हुए, प्रजापुत्री परस्त्री का हरण करने जाते हुए आपको शर्म नहीं आती ? क्या इस पापकर्म को आप करने नहीं जा रहे ? क्या आपको ऐसे अधम आशय के लिये मैं आप को मार्ग दूँ ?”

और अवाक राव, इतनी छोटी सी - बालिका में साक्षात् किसी देवी का दर्शन कर उसके चरणों में झुक गया। दोष स्वीकार किया, क्षमा माँगी, वहाँ से ही लौट जाने को स्वीकार किया और जाते जाते बालिका से एकांत में तो प्रार्थनाएँ कीं :

“हे धनदेवी ! अपने पिता के साथ की इस यात्रा से लौटने पर मैं महल पर आकर मुझे धर्म सुनाना और भरे भरे इस पापाशय को किर्मों के सामने प्रकट न कर गुप्त रखना।” बालिका ने दोनों बाँटें सहर्ष स्वीकार कीं और उसे क्षमा कर वहाँ से लौटाया।

इधर काँपते हुए पिता के होश तब ठिकाने पर आये जब पुत्र धनवाई हँसते हुई उनके पास लौटी और वे विशेषे स्तम्भित रह गये जब राव का सारा कानिना वहाँ से लौटा। बालिका से सारी घटना और इस लौटने का कारण जानने में वे असमर्थ और निराश रहे। बालिका विलकुल मौन रही।

वे दोनों अपने गंतव्य को चल पड़े। बालिका धनदेवी की बाट जोह रहे राव का जब उसके गाँव से लौटने पर फिर बुलावा आया, तब राव के शिका, जुआ, परस्त्रीगमन आदि सात व्यसनों का त्याग करवा कर धनदेवी ने उसे “भगत” जैसा परिवर्तित कर दिया। तभी पिता को बालिका की कोई अद्भुत विलक्षणता का पता चला, परन्तु वह स्वयं तो तब भी थी नितान्त मौन।

तब से ही ऐसे अनेक अद्भुत प्रसंगों, अगप्य अनुभवों, गूढ़ संकेतों, जीवन रहस्यों एवं अगमचेती, भरे निर्देशों के कारण आसपास के लोग बालिका धनवाई से एक ओर से चकित - स्तम्भित थे तो दूसरी ओर से संदेह भरे। उन्हें ‘भूतढी’ और ‘जादुगरनी’ जैसे उपनाम भी अज्ञानवश दिये गये किन्तु उनके भीतर की निर्मल ज्ञान संपदा की पहचान पाने में वे सब सर्वथा असमर्थ रहे।

ऐसे विलक्षण बाल-जीवन, कौमार्य एवं गृहस्थश्रम के ढेर से प्रसंग उनके अद्वितीय, अलौकिक धर्म-जीवन को व्यक्त करते हैं। ये सारे उनकी जीवनी में वर्णित हैं।*

तत्पश्चात्, पावापुरी में सं. १०१० में समाधि मरण प्राप्त विदुषी साधिका कु. सरला की देवलोकगत आत्मा के द्वारा प्रेरित, धनदेवी जी के ही संसारी भतीजे श्री. भद्रमुनि (बाद में योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानन्दधनजी) की प्रेरणा एवं निश्चा में गठित उनकी अद्वितीय अखंड आत्मसाधनामय जीवन, जैन-साधना “रत्नयी” की चरमसीमा है।

* दृष्टव्य है: श्री. भैरवलाल नाहटा लिखित “आत्मदृष्टा मातुश्री धनदेवी जी।”

पूर्वजन्म की संस्कार संपदा एवं वर्तमान जीवन की ऐसी अनेक साधनाओं से उच्च सिद्धियाँ-लब्धियाँ प्राप्त करने पर भी वे जीवनभर गुप्त, निरहंकारी, विनम्र एवं अत्यंत विनयशील रही ।

“लघुता में प्रभुताई है, प्रभुता से प्रभु दूर” यह संतवचन उन्होंने सतत अपनी दृष्टिसन्मुख रखा था । तदनुसार उन्होंने स्वयं कहीं भी अपनी सिद्धियों का आसार आने नहीं दिया । उनके रहस्यमय जीवन के इर्द-गिर्द जो भी घटता गया वह अपने आप, सहज और अनायास ही ।

श्रीमद् राजचंद्र जी, जो कि उनके परम आराध्य थे उनके सुवर्ण वचन “जहाँ सर्वोत्कृष्ट शुद्धि, वहाँ सर्वोत्कृष्ट सिद्धि” के अनुसार पूज्य माताजी के बाह्यांतर परिशुद्ध जीवन की सर्वोत्कृष्ट सिद्धि थी — “आत्मा को लगातार देह से भिन्न देख पाने का भेदज्ञान !” “केवल निज-स्वभाव का अखंडवर्त ज्ञान”वाली उनकी अंतर्दशा थी ।

इस भेदज्ञान - आत्मज्ञान को उन्होंने अपने व्यवहार जीवन के पद पद पर आत्मसात् कर अभिव्यक्त किया और अपने संपर्क में आनेवाले सभी को उस मार्ग की ओर मोड़ा — “मैं देहभिन्न आत्मा हूँ” की सतत ‘पकड़’ करवाते हुए ।

अपने शरणागत हजारों मनुष्यों को ही नहीं, पशु-पंछी, कीट-पतंग, जीव-जंतुओं को भी अपनी करुणा से उद्धार कर अपने अधीनस्थ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, हर्षी (कर्नाटक) को अनवरत रूप से विकसित करती हुई, विदेहस्थ सदगुरुदेव सहजानन्दधनजी प्रदात “जगत्माता” के ज्ञान-वात्सल्य-करुणा भरे बिरुद को अक्षरशः साकार करती हुई वह अभी अभी - ६५ वर्ष की देहायु में ही अपनी भावी भूमि महाविदेह क्षेत्र को आत्मसमाधिपूर्वक प्रस्थान कर गई “आत्मभावना” का आहलेक जगाती हुई, अनेकों को अप्रत्याशित परम विरह में डुबाती हुई, चैत्र शुक्ल प्रतिपदा शनिवार दि. ४.४.१९९२ की रात को ९.१५ बजे । ॐ शांति ।

© संपादन: प्रा. प्रतापकुमार एवं श्रीमती सुमित्रा टोलिया
वर्धमान भारती इंटरनैशनल फाउन्डेशन

१९८५-८६

१२ कैम्ब्रिज रोड, बेंगलोर - ५६० ००८. फोन: ५७८५५७